IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

nf{k.k Hkkjr esa vkFkd fodkl esa 0;kikfj;ksa ,oa f'kYidkjksa dh egrh Hkfedk % ,d v/;;u

Mk- inhi flag
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
टी. डी. पी. जी. कालेज, जौनपुर, उ. प्र.

प्राचीन काल में भारत सोने की चिड़ियों के नाम से प्रसिद्ध था, क्योंकि इसके पास अतुलित सम्पदा थी। इसका ज्ञान विश्व को तब हुआ जब भारत का व्यापारिक सम्बन्ध विदेशों के साथ प्रारभ हुआ होगा। यह विदेशों के साथ पुरातन काल से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध स्पष्ट करता है।[1] यहाँ की उर्वर भूमि, उपयुक्त जलवायु एव प्राकृतिक साधनों के कारण बहुत अधिक पैदावार होती थी तथा खनिज पदार्थों की भी कमी नहीं थी। यहाँ के लोग बहुत परिश्रमी और साहसी थे जिन्होंने अनेक व्यवसाय और उद्योग आरम्भ किए। उनका व्यापार केवल भारतवर्ष तक ही सीमित नहीं था, बल्कि विदेशों में भी फैला था।

व्यापार का उदय उस समय माना जाता है जब मनुष्य ने कृषि और पशुपालन शुरू किया। कृषि एवं पशुपालन के अतिरिक्त मनुष्य मिट्टी के बर्तन भी बनाने लगा। यही से शिल्प एवं शिल्पकार की शुरूआत होती है। लोग कृषि उत्पाद एव पशुओं के बदले में मिट्टी के बर्तन लेन–देन करने लगे। सभ्यता के विकास की इस अवस्था में वाणिज्य को मान्यता मिली। इस सभ्यता के अवशेष हमें हडप्पा की सभ्यता में मिले है, जिसका समय लगभग ई०पू० 3000 माना जाता है। कुछ समय पश्चात् धातु का प्रयोग भी होने लगा जिससे उत्पादन पहले से अधिक बढ़ गया और व्यापार को भी प्रेरणा मिली।[2] प्राचीन काल में दक्षिण भारत आर्थिक दृष्टि से यह समृद्ध देश था, जिसका मूल कारण यहाँ की विभिन्न आर्थिक संस्थाओं का व्यवस्थित संगठन था, उर्वरा भूमि तथा जलवायु के फलस्वरूप यहाँ उपज बहुत होती थी, खनिज पदार्थों की भी कमी नहीं थी। साथ ही अनेक प्रकार के उद्योग और व्यवसाय से भी उत्पादन में वृद्धि हुई, आन्तरिक तथा वाह्य व्यापार उन्नत अवस्था में था।[3] प्रस्तर युग में खेती का सिलसिला शुरू हो जाने के बाद बढ़ती हुई आबादी के पोषण के लिए कृषि पशुपालन आवश्यक हो गया। इस युग में सिन्धु घाटी में सभ्य जीवन का सूत्रपात हुआ और भारतीय इतिहास में नगर जीवन का श्रीगणेश सर्वप्रथम यही हुआ। उन्नत किस्म की सड़कों का प्रबंध, जल निकासी प्रणाली की व्यवस्था का ज्ञान हमें यही से ज्ञात होता है, नगर नियोजन हड़प्पा सभ्यता की बेमिसाल व्यवस्था थी, ये सब प्राचीन भारत के शिल्प एव शिल्पकारों की बेमिसाल शिल्पकारी का उदाहरण है। लोथल में ईंटों से निर्मित नाव का एक ऐसा घाट मिला है जो नहर के द्वारा खाड़ी से जुड़ा था, इस बात का प्रमाण है कि समुद्र तटवर्ती नगरों में बन्दरगाहों की व्यवस्था थी और पश्चिमी एशिया के साथ उनका घनिष्ट व्यापारिक सम्बन्ध था।[4] दक्षिण भारतीय संदर्भ में अतरंजीखेडा और हल्लूर दो ऐसे पुरातात्त्विक स्थल हैं, जहाँ से क्रमश 1100–1200 ई०पू० और 1400 ई०पू० में लोहे के प्रयोग का प्रमाण पहली बार मिलता है, किन्तु नियमित रूप से लोहे के प्रयोग की जानकारी नहीं मिलती है, चित्रित घूसर मृदभाण्ड काल से ही नियमित रूप से लोहा मिलने का प्रमाण उपलब्ध है।[5] दक्षिण भारत के कई उत्खननों में लोहे की वस्तुएँ मिली है और प्रतीत होता है कि भारत ई०पू० प्रथम सहस्त्राब्दी उत्तरार्द्ध में आकर लौह–युग में पदार्पण कर चुका था। लोहे को गलाने की प्रक्रिया ज्ञात थी और ई०पू० 700 तक भारत में आर्यजन लोहे का उपयोग करने लगे थे। उज्जैन में लोहे की वस्तुओं का निर्माण व्यापक रूप से होता था।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

व्हीलर को ब्रह्मगिरि में लोहे का इस्तेमाल करने वाले लोगों का पता चला है और दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में लोहे की विविध वस्तुएँ मिली है। उज्जैन में लोहे के हथियार मिले है जिससे लौह युग के नगरीय जीवन का पता चलता है।[6] इतिहासकार दामोदर धर्मानन्द कौसाम्बी ने बौद्ध ग्रन्थ सुत्तनिपात में लोहे जिसे पाली भाषा में 'अयस' या आमोज्ञ कहा गया है इसकी जानकारी मिलती है। कृषि में लोहे के व्यापक प्रयोग का अर्थ है कि उसका आरम्भ अवश्य ही उससे पहले हुआ होगा और उन्होंने यह तिथि 700–80 ई०पू० रखी है।[7] बी०आर० सुब्रहमणयम् ने पुरातात्त्विक तथ्यों के आधार पर बताया है कि लोहे के अस्तित्व का प्राचीन साक्ष्य दोआव में ग्यारहवी दसवीं शताब्दी ई०पू० में मिलता है।[8] और द्वितीय शताब्दी ई०पू० में आकर तो सारा भारत लोहे से परिचित हो चुका था। दक्षिण भारत और उड़ीसा ने ई०पू० चौथी शताब्दी में लौह–युग में प्रवेश किया। चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति भारत में लोहे का उपयोग करने वाली प्राचीनतम् संस्कृति है और यह उन आर्यजनों का प्रतिनिधित्व करती है जो इस शिल्प विज्ञान को लाने वाले थे।[9] लोहे के उपयोग से कृषि में बेहतर दृढ़ता आयी जिसका प्रयोग ई०पू० छठी शताब्दी में दिखाई देता है कि इसकी सामाजिक परिवर्तन में क्रांतिकारी भूमिका है। कर्टिअस के अनुसार पोरस ने सिकन्दर को तीस पौण्ड भारतीय इस्पात उपहार में दिया था। प्लिनी ने भारतीय इस्पात की तलवारों की चर्चा की है। गौतम बुद्ध के युग में शिल्पों में जो तीव्र गति से विशेषीकरण हुआ उसमें भी लोहे का हाथ है। लोहे के व्यापक प्रचलन के फलस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक दोहन मानव अपने हित में करने में सफल हो सका जिसके फलस्वरूप मानव संस्कृति का विकास तीव्र गति से संभव हो सका। खेती का प्रचलन विशाल क्षेत्र में संभव हो सका और अधिशेष उत्पादन नगर क्षेत्र के आधार बने। इससे उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया, कृषि कर्म का विस्तार हुआ और मकान, गाड़ी, नाव आदि बनना सरल हुआ। ताँबे की तुलना में लोहा बहुत सस्ता था और किसानों व शिल्पियों के द्वारा लौह औजार खरीद पाना संभव हुआ। इन्ही परिस्थितियों में बौद्ध एव जैन धर्म का उदय हुआ। मगध का उत्थान प्रचुर लौह प्राप्ति के कारण संभव हो सका। लोहे के आविष्कार और प्रयोग से निम्नलिखित मौलिक परिवर्तन हुए– जमीन को साफ करना आसान हो गया और लोहे की कुल्हाड़ी से घने जंगलों को काटा जाना संभव हो सका।[10] उत्पादन के उपकरणों पर व्यक्तिगत स्वामित्व होने से निजी सम्पत्ति अस्तित्व में आई। समाज में धातु शिल्पियों की प्रतिष्ठा बढ़ी तथा लोहे के हथियारों की मांग बढ़ गई। समृद्ध भूस्वामियों और व्यापारियों का उदय हुआ। लोहे के प्रयोग के फलस्वरूप अधिक उत्पादन संभव हो सका, जिससे नगर, निवासियों का भरण–पोषण संभव हुआ। प्राचीन काल में जो यह नगरीकरण हुआ, वह धातुओं का इस्तेमाल मुद्रा और अन्य वस्तुओं के प्रचलन में करने लगा। बड़े पैमाने पर उत्पादन होने से नगर केन्द्र उदित और विकसित हुए और सुसंगठित बाजार स्थापित हुए। ई०पू० छठीं शताब्दी के आते–आते लौह उद्योग बढ़ते हुए राज्यों–रियासतों की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए काफी गतिशील रहा। ई०पू० चौथी शताब्दी में धातुकर्म का जो प्रसार और विस्तार देखा जाता है, उससे प्रकट होता है कि लौह शिल्प विज्ञान सारे देश में फैला हुआ था और परिपक्वावस्था में पहुँच गया था। इस काल का एक लोहा गलाने का स्थल गुजरात की खुदाई में निकला है, भारत में इसकी प्रविधि आसान होते हुए भी श्रम साध्य थी।[11] शतपथ ब्राह्मण में हल जोतने और खेती के विभिन्न कार्यों से सम्बन्धित अनुष्ठानों का पर्याप्त विवरण मिलता है। छह, आठ, बारह और चौबीस बैलों के जुए के वर्णन से स्पष्ट है कि हलों से गहरी जुताई का काम लिया जाता था। अथर्ववेद में नदियों से नयी नाली में पानी लाने का धार्मिक अनुष्ठान वर्णित है। चावल (ब्रीही) का पहली बार उल्लेख मिलता है। उस समय नये–नये शिल्पकारी का विकास हुआ। धातु गलाने के धंधे में विकास होने से लोहार, बढ़ई, सुनार, चमार, जौहरी, रंगसाज, कुम्हार आदि के महत्वपूर्ण कार्य काफी आसान हो गये। कर की प्रणाली विकसित होने के फलस्वरूप अनेक सम्बद्ध अधिकारियों की नियुक्ति की गयी, जहाँ से प्रशासकीय कार्यों की शुरुआत मानी जाती है। लोहार के द्वारा लोहा गलाने की विधि

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

के प्रयोग के फलस्वरूप लोहे के हथियारों का बड़े पैमाने पर उत्पादन शुरू हुआ जिसके फलस्वरूप न केवल उद्योग धंधों का विकास सम्भव हुआ, बल्कि प्रौद्योगिकी के निर्माण ने कृषि कार्यों को भी सुलभ बनाया, ज्यादा से ज्यादा अन्न उत्पादन हो सका, अधिशेष उत्पादन का दौर शुरू हुआ। ई०पू० छठी शताब्दी के आस–पास देश में 60 नगरों का उल्लेख मिलता है। दक्षिण भारत के बीच नये व्यापारिक संभावनाओं का विकास होना प्रांरभ हुआ, व्यापार ने शहरी जीवन को विशेष रूप से प्रभावित किया है।[12] धातु के सिक्को के प्रयोग से व्यापार और शहरीकरण को बढ़ावा मिला। शहरों के विकास से कलाओं और शिल्पों ने व्यापार को मौद्रिक अर्थव्यवस्था से पूरी तरह जोड़ दिया। मौर्यकाल में धनी भूस्वामी वर्ग, सुशिक्षित शिल्पकार और समृद्ध व्यापारी अस्तित्व में आए। कराधान व्यवस्था के विस्तार से शासनतंत्र का सुदृढ़ीकरण स्वभाविक था और राज्य का नियंत्रण जीवन के सभी पहलुओं पर बढ़ता गया जिसकी चरम परिणति मौर्यकाल में देखने को मिलती है। मौर्य शासकों ने दक्षिण भारत में लाभप्रद आर्थिक क्रिया–कलापों की व्यवस्था और संचालन की ओर पूरा ध्यान दिया। सिंचाई की सुविधा से कृषि की संभावनाओं में अपार विकास संभव हो सका। आन्तरिक संचार की सुविधा से व्यापार को बढ़ावा मिला, नदियाँ इसमें सहायक सिद्ध हुई। सरकारी कार्यकलापों की मजबूत आधारशिला थी नगद आर्थिक व्यवस्था, जो मुख्यतया शिल्प तथा शिल्पकारों पर आधारित था। मौर्यो के बाद दक्षिण में सातवाहन राजवंश अस्तित्व में आये। यद्यपि ये राजवंश मौर्यो की भाँति केन्द्रीयकृत राजनीतिक सत्ता स्थापित नहीं कर सके। सातवाहन राजवंश ने छोटे–छोटे राजाओं से सामन्ती आधार पर सम्बन्ध स्थापित किये, सातवाहनों के अधीन मराठी, इच्छवाकु आदि कई, जागीरदार थे। सातवाहनों ने ब्राह्मणो और बौद्ध सन्यासियों को लगान और प्रशासनिक नियत्रण के मुक्त भूमिदान करने की प्रथा शुरू की। भूमि अनुदान का सबसे पुराना और पहला अभिलेखीय प्रमाण प्रथम शताब्दी ई०पू० का है जब सातवाहनों ने वैदिक अनुष्ठानों को सफल बनाने के निमित्त पुरोहितो को ग्राम अर्पित किये।[13] निःसन्देह इस युग की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत और पश्चिमी देशों के बीच व्यापार की प्रगति काफी तीव्र गति से हुई। मौर्यों के समय जो आन्तरिक आवागमन की सुविधा बढ़ी, उससे व्यापार को सुदृढ़ आधार मिला। हिप्पॉलस ने मानसून की हवा का पता लगाकर विदेश व्यापार को और अधिक गति प्रदान की। रोमन साम्राज्य के उदय से भारतीय व्यापार को प्रथम शताब्दी ई०पू० में प्रोत्साहन मिला। भारत चीन से रेशम खरीदता था और रोम को निर्यात करता था। रोमन सम्राट औकोलियन ने सोने के बराबर इसका मूल्य घोषित कर दिया था, ये लोग भारत एवं दक्षिण पूर्वी एशिया (इंडोनेशिया, चीन) से मसाले वहाँ भेजते थे। रोमन सिक्के के 68 खजाने अभी तक भारत में खुदाइयों से मिले है, लोगों के आर्थिक जीवन में मुद्रा अर्थव्यवस्था का आगमन हो चुका था। नकद आर्थिक व्यवहार और व्यापार के फैलाव के कारण पश्चिमी और पूर्वी तटवर्ती क्षेत्रों तथा देश के भीतरी भागों में अनेकानेक शहर स्थापित हो चुके थे। शिल्पकारों, दस्तकारों ने मिलकर अपने संघ का सगठन किया और सौदागरो ने भी अपने नियम स्थापित किये, ऐसे अनेक संघो और निगमों का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। इन लोगों को इस काल में मौर्यों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता थी। संघ और निगम को सदस्यता शिल्पकारों और दस्तकारों को सामाजिक प्रतिष्ठा और सुरक्षा प्रदान करती थी। इस तरह प्राचीन दक्षिण भारत का आर्थिक विकास क्रम अपने गति से जो चला वह आज तक गतिमान है।[14] दक्षिण भारत के ग्रामीण क्षेत्र में स्त्रियाँ कुछ विशिष्ट उत्पादों में संलग्न रहती थी। यहाँ उद्योग और व्यापार के लिए कलिंग और मलाया से सूत तथा रेशम चीन से मगाया जाता था, बुनकरी यानी वस्त्र उद्योग मुख्य उद्योग के रूप में प्रतिष्ठित था। इसका अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सूत कातना, वस्त्र बुनना, कशीदाकारी घरेलू उद्योग के रूप में अत्यन्त लोकप्रिय था, उरैयुर और मदुरा सूती वस्त्र के लिए मुख्य केन्द्र थे। सूती वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त रस्सी बुनना, चमड़े का कार्य, अस्त्र शस्त्र बनाना, शंख और हाथी दांत का कार्य, क्षावे बनाना आदि प्रमुख उद्योग थे।[15] इस तरह संगम युग में अनेक उद्योग धंधो का विकास हुआ। वस्त्र उद्योग एक महत्वपूर्ण

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

व्यवसाय था, उरैयूर, मदूरा आदि नगर वस्त्र निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे, 'पेरिप्लस' में उरैयूर के कपड़ों की सराहना की गई है।[16] तमिल कविताओं में सुन्दर और बारीक सूती और रेशमी कपड़ों का वर्णन मिलता है, पुरनानुरू में सूती कपड़े के बारे में वर्णन करते हुए कहा गया है कि ये इतने महीन है कि उन पर आँखे नहीं ठहरती है, कपड़ों पर कशीदाकारी भी की जाती थी, परन्तु इस प्रकार के कपड़ें कीमती होते थे और केवल समृद्ध लोग ही इसका उपयोग करते थे।[17] पौरूनाराटुपडै में उत्कृष्ट शिल्क परिधान का उल्लेख हुआ है, सिल्क को सिनम कहा जाता था, इसका कारण यह है कि सिल्क वस्त्र निर्माण की तकनीक उन्होंने ही शुरू की थी, वस्त्र निर्माण उद्योग में अधिकांश महिलायें काम करती थी। तमिलों ने अपने शिल्पकारी में काष्ठ उद्योग के क्षेत्र में भी काफी विकास किया। लकड़ी के औजार, हथियार, चारपाई विभिन्न प्रकार के फर्नीचर, पात्र और कलाकृतियों के अलावा भवन निर्माण में बढ़ई की जरूरत पड़ती थी। लकड़ी के तरह–तरह के खिलौने भी बनते थे, खेती हल–बैल से होती थी, अतएव, बड़ी संख्या में बढ़ई हल तथा अन्य कृषि उपकरण बनाते थे। मछुआरे के लिए छोटी–छोटी नाव तथा व्यापार हेतु बड़े–बड़े पोतो का निर्माण निश्चय ही अनुभवी और कुशल कारीगरों के द्वारा संभव हुआ होगा। पेरूपानारूपडै में एक बड़े जलयान का जिक्र हुआ है जिसके मस्तुल पर पताके लहराते थे। अश्वचालित रथों की चर्चा भी कई कविताओं में मिलती है, ऐसा प्रतीत होता है कि राजपरिवार के लोग अश्वयुक्त रथ पर चलते थे। यद्यपि, एक कुशल शिल्पकार के द्वारा एक दिन में आठ रथ बनाने का जिक्र अतिरंजना का दृष्टांत है।[18] लोहे की जानकारी, तमिल प्रदेश में पहले से थी, लोहे के औजार, हथियार और खिलौने तो बनते ही थे, भवन और पोत निर्माण में भी लोहारों का सहयोग आवश्यक था। युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले की स्मृति में प्रस्तर स्मारक तैयार करने में भी लोहे के औजारों की जरूरत होती थी।[19] पुरनानुरू लोहार की कार्यशाला में हथियार निर्माण और मरम्मत का उल्लेख करता है। लोहार की कार्यशाला को 'कोरूरै' और 'कौल्तुरै' कहा जाता था।[20] प्रतीत होता है कि कुछ शिल्पकार पढ़े–लिखे थे और उनकी समाज में प्रतिष्ठा थी, यह इस बात से जाहिर है कि आलोच्यकाल के कुछ कवि स्वर्णकार और लोहार थे, के०के० पिल्लै ने ऐसे आधे दर्जन कवियों की चर्चा की है।[21] मिट्टी बनाने वाले कुम्भकारों का उद्योग भी उन्नति अवस्था में था, लगभग सभी बड़े गाँव में एक या दो कुम्भकार परिवार अवश्य रहते थे जो गाँव के लोगों की आवश्यकतानुसार बर्तन तैयार करते थे, बर्तन को आवे में पकाया जाता था, कुंभकारों को 'कुयवर' कहा जाता था।[22] कुयवर परिवार गाँव के सम्मानित सदस्य होते थे। स्वर्णकारी भी एक महत्वपूर्ण व्यवसाय था, सोने, चाँदी तथा अन्य धातुओं और कीमती पत्थरों के आभूषण बनते थे, मोतियों के भी आभूषणों का दक्षिण भारत में खास प्रचलन था। कोकै नगर मोतियों के लिए प्रसिद्ध था, दक्षिण भारत के मोतियों की उत्तर भारत में और विदेशों में अच्छी मांग थी। स्वर्णाभूषण राजा से लेकर गाँव के सम्पन्न परिवारों में लोकप्रिय था, राजा रत्न जड़ित स्वर्णाभूषण पहनते थे। विदेशी व्यापार में तमिल व्यापारी भारी मात्रा में ऐसी वस्तुओ का भण्डारण करते थे, जैसे– मिर्च, अदरक, चावल, चन्दन, मसाले, हाथी दाँत, मोती, रत्न, सूती और रेशमी वस्त्र आदि ऐसी वस्तुएँ थी जिनकी यवन देशों में बड़ी मांग थी। इसके आन्तरिक व्यापारिक वस्तुओं में पशु भी सम्मिलित थे। प्रथम से तीसरी शताब्दी में भारत और रोम के बीच व्यापार की बड़ी हिस्सेदारी प्रतीत होती है। संगम साहित्य से तमिल देश के आन्तरिक और विदेश व्यापार के बारे में जानकारी मिलती है। पी०टी० श्रीनिवास अय्यागर का मत है कि व्यापार का उदय 'नेदल' (अर्थात समुद्र तटवर्ती क्षेत्र) में हुआ।[23] अधिकांश आन्तरिक व्यापार वस्तु विनिमय द्वारा होता था, धान सामान्यतः विनिमय का सबसे स्वीकृति माध्यम था, प्रायः धान से नमक बदले जाने का जिक्र मिलता है, धान शुरू से ही तमिल प्रदेश का मुख्य फसल रहा है और नमक आम उपभोक्ता–वस्तु था जो तटवर्ती इलाके में तैयार होता था, नमक बेचने वाले को 'उमनर' और 'उमत्तियर' कहा जाता था।[24] नमक और धान के अतिरिक्त मृगमास, मछली, मछली का तेल, शहद आदि चीजे बदली जाती थी। 'पोरूनारादुपडै' में शहद और कदमूल आदि को

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

बदलकर मछली की चर्बी शराब तथा भुजे हुए चावल और ईख से ताड़ी और मृगमास बदले जाने का उल्लेख हुआ है।[25] 'नरिनई' की एक कविता में नमक के मैदान में धान से ले जाकर नमक से विनिमय करने का जिक्र मिलता है। 'पेरूपानारूपडै' में उन ग्वालिनों का वर्णन है जो सिर पर मट्ठा रखकर सुबह से बेचने निकलती है और उसकी आमदनी से अपने परिवार का भरण–पोषण करती है, कहा गया है कि मट्ठा और घी बेचकर वे सोने का डल्ला, दूधारू भैस और अच्छी गाय खरीदती है।[26] फेरी वाले मुख्य रूप से मछली, ताड़ी, धान और बाजरा के अलावे कभी–कभी कपड़ा और आभूषण भी बेचते थे।[27] लेकिन आर्थिक दृष्टि से संगम युग की सबसे महत्वपूर्ण बात है तमिल राज्यों का समुद्र पार के देशों खासकर रोम साम्राज्य के साथ व्यापारिक सम्बन्ध था, तमिल कविताओं में इस व्यापार का बड़ा सजीव वर्णन हुआ है।[28] समकालीन कविताओं साहित्य तथा पुरातात्विक साधनों से भी इस बात की पुष्टि होती है। प्राचीन तमिल कविताओं में तमिल राज्यों के साथ समुद्रपारीय देशों के व्यापार के उल्लेख मिलते है।[29] इनसे व्यापार की प्रकृति के साथ–साथ उन देशों के साथ सांस्कृतिक सम्पर्क के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त है।[30] प्रतीत होता है कि पश्चिमी देशों से आयातित मदिरा काफी लोकप्रिय थी, यवनों द्वारा अच्छे पोतो में लाई गई शीतल और सुगन्धित मदिरा पान करते हुए शान्ति और सुखमय जीवन व्यतीत करे।[31] एक अन्य कविता में इस प्रकार वर्णन है– सुन्दरता से निर्मित पोतो में पेरियारू के श्वेत जल में हलचल पैदा करते हुए यवन सोना लेकर आते है और लालमिर्च लेकर लौट जाते है। मदुरैकांची में सुदूर देशों के (जलपोत) कप्तानों द्वारा महासमुद्र होकर अच्छे नस्ल के घोड़े एवम् अन्य बहुमूल्य वस्तुऐं लाने और तमिल देश के बहुमूल्य आभूषणों से उसके विनिमय किये जाने का उल्लेख मिलता है।[32] पेरूपानार्रस्पडै, में बन्दरगाह वाले नगर में जलपोतों से दूध की तरह सफेद अश्व लाये जाने का जिक्र हुआ है।[33] पट्टिनप्पालो में भी पुहार में जलपोतों से लाये गये घोड़े का उल्लेख मिलता है।[34] इसी कविता में विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं का वर्णन मिलता है– ''स्थाई यश प्राप्त देवताओं के संरक्षण में उत्तम गति वाले घोड़े समुद्र पार से लाये गये है, काली मिर्च के बोरे गाड़ियों में लाए गये है, उत्तरी पर्वत से प्राप्त हीरे और सोना, पश्चिमी पर्वत से प्राप्त चन्दन और अंजीर दक्षिण समुद्र से प्राप्त मोती, पश्चिमी समुद्र के मूंगे, गंगा घाटी से प्राप्त वस्तुएँ, कावेरी की उपज, श्रीलंका के भोज्य पदार्थ और कालगम से प्राप्त वस्तुएँ– ये सब चीजे जो कीमती थी और अपरिमित भी, उनकी धन–सम्पत्ति की परिपूर्ण चौड़ी सड़कों में ढेर की ढेर पड़ी हुई है।[35] वस्तुतः रोम साम्राज्य के साथ सुदूर दक्षिण के व्यापारिक सम्बन्ध के बारे में संगम कविताओं में पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध है। 'पेरिप्लस' के लेखक ने निश्चित रूप से पश्चिमी भारत के बन्दरगाहों की यात्रा की थी और वहाँ चल रहे व्यापार का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया था। किन्तु प्रतीत होता है कि उसको पूर्वी तट का बहुत कम ज्ञान था। इसके विपरीत टॉलमी के 'भूगोल' से भारत के पूर्वी तट और उससे भी दूरस्थ स्थानो के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। इतिहासकार रामशरण शर्मा का मत है कि दक्षिण भारत में प्रथम शदी के आरम्भिक वर्षों के जो सिक्के मिले है उनसे यह संकेत मिलता है कि हिप्पालस के कुछ पहले से ही मानसून की जानकारी थी।[36] हिप्पालस पहला व्यक्ति था जिसने बन्दरगाहों की स्थिति और समुद्रों की जांच–पड़ताल कर यह पता लगाया कि किस तरह से नाविक समुद्र में अपना सीधा रास्ता निकाल सकते थे, इसीलिए दक्षिण–पश्चिमी हस का नाम ही हिप्पालस पड़ गया।[37] उसी समय से काना (अरब के दक्षिणी किनारे पर अवस्थित हिस्न गौरव जिसका वर्तमान नाम वीर अली है) तथा अफ्रीका के सबसे पूर्वी था हिस्से में अवस्थित 'केप ऑफ स्पाइसेज' से 'डमिरिका' (तमिल प्रदेश) जाने वाले जहाजों का मुँह हवा से काफी हटाकर रखा जाता था। भडौंच और सिन्ध जाने वाले जहाज किनारे से तीन दिन की दूरी पर चलते थे और फिर वहाँ से अनकूल हवा के साथ समुद्र में काफी दूर जाकर सीधे तमिलनाडु की ओर चले जाते थे।[38] मानसून का पता चल जाने पर रोम से भारत की यात्रा औसतन 6 महीनों में होने लगी। भारत और श्रीलंका की ओर जाने वाले यात्री जुलाई में अपनी यात्रा प्रारम्भ करते थे ताकि लाल सागर

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

पहली सितम्बर के पहले पार कर जाने पर उन्हें अरब सागर में जहाज के अनुकूल मौसमी हवा मिल जाये। तमिल राज्यों में सर्वप्रथम पाण्ड्य शासकों ने रोम के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की। हिप्पालस द्वारा मानसून की खोज जिसकी वजह से रोमन व्यापारी अरबों के ऊपर आश्रित नहीं रहे, अब वे अरब बन्दरगाहों पर बिना रूके सीधे भारत के साथ व्यापार करने की स्थिति में आ गये। इस तरह, अरब बिचौलिए तथा उनके व्यापार केन्द्र अब महत्वहीन हो गये और सिकन्दरिया एक प्रमुख मण्डी के रूप में उदित हो गया। नीलकण्ठ शास्त्री की धारणा है कि अब व्यापार सिक्कों अर्थात सोना–चाँदी की बजाय वस्तु विनिमय द्वारा होने लगा। तमिल कविताओं में भी विनिमय के कई उदाहरण मिलते हैं। पेरिप्लस के लेखक ने चोल बन्दरगाहों में तीन प्रकार के जलपोतों का जिक्र किया है जो निम्न है– (क) स्थानीय यातायात के लिए हल्की नौकाएँ जो तट के किनारे–किनारे अमेरिका तक जाते है। (ख) वे जलपोत जो क्रीसे अर्थात् रग्रीसी द्वीप, अर्थात स्वर्ण द्वीप। यहाँ इसका तात्पर्य मलय प्रायद्वीप से है और गंगा की यात्रा करते है, उन्हें कोलडिया कहा जाता है और वे बहुत विशाल होते है। संगम काल के एक कवि उरूद्रनगन्तनार ने एक स्थान पर ऐसे बडे–बडे जलपोतों का जिक्र किया है जिनके मस्तूलो पर ध्वजाएँ लगी रहती थी। इन जलपोतो की उसने बड़े–बड़े हाथियों से तुलना की है।[39] पेरिप्लस के लेखक ने तमिल प्रदेश की प्रमुख मड़ियो का उल्लेख किया है।[40] इनमें से नौरा (कन्ननोर), म्युजिरिस (मुरिशी अथवा क्रैगनोर), टिंडिस (पोन्ननी), नेलसिडा (ट्रावणकोर में कोट्टायम के आस–पास) तथा बकरे (अलेप्पी के पास पोरकड) आदि महत्वपूर्ण है। इन नगरों से निर्यात की जानेवाली वस्तुएँ थी– कालीमिर्च, मोती, हाथी दाँत, रेश्मी कपड़ा, गंगा प्रदेश से प्राप्त जटामासी, तेजपत्ता, कई तरह के पारदर्शी पत्थर, हीरे, नीलमणि, कच्छपपृष्ठ आदि।[41] पेरिप्लस में दी हुई सूची से स्पष्ट होता है कि रोमवासी मुख्य रूप से मसाले और कीमती पत्थरों का आयात करते थे, जिसके लिए दक्षिण भारत आज भी प्रसिद्ध है। ये सभी संगठित व्यापार के अंग थे, क्योंकि ये सभी चीजे सीधे भारत से ही भेजी जाती थी। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी वस्तुएँ थी जैसे रेशम, जिसे चीन से मंगवाकर भेजा जाता था। पहलवों के साथ प्रत्यक्ष युद्ध की वजह से रेशम सीधे यूरोपीय मार्ग से न जाकर कभी–कभी भारत के पूर्वी तट से होते हुए मालाबार के बन्दरगाहों पर पहुँचता था और वहाँ से पश्चिमी देशों को भेजा जाता था। पेरिप्लस में उन वस्तुओं के भी उल्लेख है जो दक्षिण भारत के नगरों में बाहर से मंगवाएं जाते थे। ये वस्तुएँ थी– पुखराज, महीन कपड़े, चित्रित क्षौभ, अजन, अपरिष्कृत शीशा, तांबा, रांगा, शराब, गेहूँ। गेहूँ पश्चिम के पोतो में नाविकों के लिए आता था, क्योंकि यहाँ के व्यापारी गेहूँ का व्यापार नहीं करते थे।[42] वैसे भी तमिलनाडु में गेहूँ का उत्पादन कभी भी लोकप्रिय नहीं रहा है। उपर्युक्त वस्तुओं के अलावे रोमवासी भारत को सुराहीनुमा मदिरा–पात्रों, (एम्फोरे) और लाल चमकीले ऐरेटाइन मृद्भाण्डों का निर्यात करते थे। अरिकामेडु (पांडिचेरी) में ये चीजे उत्खनन में प्राप्त हुई है। परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि रोमवासी भारी मात्रा में सोने और चाँदी के सिक्का का निर्यात करते थे। भारत में अब तक उत्खनन में 129 रोमन सिक्कों का संग्रह मिलने की सूचना है। इनमें से अधिकांश दक्षिण भारत में मिले है। यही कारण है कि प्लिनी ने बार–बार यह शिकायत की है कि भारत के साथ व्यापार की वजह से रोम का सोना बाहर जा रहा है। सक्रिय व्यापार के क्रम में विदेशी व्यापारियों ने व्यापारिक हितों के मद्देनजर प्रमुख नगरों में प्रवास की आवश्यकता महसूस की। तमिल देश के भीतरी भागों में आगस्टस से लेकर नीरो के समय तक रोमन सम्राटों के सोने और चाँदी के जो सिक्के मिलते है, उनसे उस समय के व्यापार–विस्तार की सूचना तो मिलती ही है साथ ही यह भी संकेत मिलता है कि उस समय सुदूर दक्षिण भारत के प्रमुख नगरों में रोमन प्रवासी बड़ी संख्या में मौजूद थे।[43] कावेरी नदी के उत्तरी तट पर अवस्थित कावेरीपट्टनम विदेशी व्यापारियों का एक प्रमुख केन्द्र था। पाड्ण्य शासकों की राजधानी मदुरा नगर में भी रोमन बड़ी संख्या में प्रवास करते थे। तमिल साहित्य के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्य से भी इस बात की पुष्टि होती है। रोम के सोने और चाँदी के

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429 Volume 6, Issue 5, October 2026 Impact Factor: 8.2

जो सिक्के दक्षिण भारत में मिले है उसके अतिरिक्त ताम्बे के सिक्के मदुरा शहर में यत्र–तत्र तथा नदी किनारे बालुका राशि के नीचे बड़ी संख्या में मिले है। पी०टी०एस० अय्यगार का मत है कि एक ही शहर में यत्र–तत्र इन सिक्कों का मिलना यह संकेतित करता है कि ये सिक्के रोज–ब–रोज के उपयोग के लिए रोमन व्यापारी द्वारा अपने साथ लाये गये होंगे, भारतीय बाजारों में मुद्रा के रूप में प्रचलन के लिए नहीं।[44] इस सन्दर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि टॉलमी के 'भूगोल' में पश्चिमी तट पर आगस्टस के मन्दिर होने की जो सूचना है वे भी उन्हीं रोमनों के द्वारा और उन्हीं के उपयोग के लिए बनाए गये होंगे। टॉलमी ने लिखा है कि उनकी सूचना उन लोगों की जुबानी है जो कई वर्षों तक भारत में रह चुके है।[45] पेरूपानारूपडै में विदेशी प्रवासियों के बारे में कहा गया है कि वे अलग बस्ती में रहते है और उनके ऊँचे भवन आसमान से बाते करते है।[46] जो संगम युग के स्थापत्य कला का बेजोड नमूना है। इतिहासकार पी०टी०एस० अय्यगर का कथन है कि विदेशी अप्रवासी केवल व्यापारी नहीं थे, उनके साथ रोमन अभियन्ता, शिल्पी और सैनिक भी थे। रोमन अभियन्ता तमिल राजाओं के लिए भित्ति–पातक यत्र तैयार करते थे जिनसे किले की दीवारें तोड़ी जाती थी। वे लोग किले की दीवारो के सामने रखे जाने वाले प्रतिरक्षा इंजन भी बनाते थे।[47] तोलकाप्पियम के भाज्यकार नाच्चिनर्किनियर ने भी दुर्गों में यवनों के द्वारा निर्मित यंत्रों के होने की चर्चा की है।[48] अय्यगर ने 'सिलप्पदिकारम' और परवर्ती 'जीवकचिन्तामणि' में उल्लिखित विभिन्न प्रकार के यात्रिक हथियारों का हवाला देकर उपर्युक्त बात की पुष्टि की है। रोम से आने वाले व्यापारिक वस्तुओं की मार्ग में सुरक्षा हेतु धनुर्धर तथा अन्य सैनिक साथ में चलते थे। प्रतीत होता है कि अपने बेहतर प्रशिक्षण तथा उत्तम हथियारों के कारण उन्होंने तमिल शासकों को प्रभावित किया। फलस्वरूप राजप्रसाद में द्वारपाल और राजा के अंगरक्षक के रूप में उनकी नियुक्ति होने लगी। इसीलिए उन्हे हत्यारी तलवारों वाले यवन तथा दुर्ग प्राचीन फाटकों का उत्तम रक्षक भी कहा गया है।[49] ऐसा प्रतीत होता है कि रोमन लोगों की भारत प्रवास के दौरान स्थानीय लोगों से भी घनिष्ठता बढ़ी। बहुत संभव है कि उनमें से कुछ लोग विवाह सम्बन्ध कायम कर हमेशा के लिए यही बस गये। इस बात के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु पहली सदी के एक रोमन पेरिरस में इण्डिकन नामक एक स्त्री का पत्र मिला है जो उसने अपनी सहेली को लिखा है। मोतीचन्द्र की राय में इण्डिकस शायद भारत में रहने वाले किसी यूनानी की भारतीय पत्नी थी।[50] तमिलाकम में रहने वाले रोमन नागरिक असली रोमन नही बल्कि रोमन प्रजा थे। वस्तुतः रोम और भारत के बीच का व्यापार यूनानी शामी और यहूदी व्यापारी चलाते थे और उन्हीं में से कुछ लोग भारत में रहते थे।[51] पाण्डिचेरी के पास वीरमपट्टनम के उत्खनन से पता चलता है कि वहाँ रोमन व्यापारियों की बस्ती थी। संगम युग में शिल्पकारी का बेजोड़ नमूना देखने को मिलता है। दक्षिण भारत में अपेक्षाकृत धनवान लोग ईंट और गारे से बने मकानों में रहते थे जिनकी दीवारों पर देवताओं की मूर्तियों और पशु–जीवन के चित्र अंकित होते थे जो उस समय के शिल्पकारी का ज्वलंत नमूना था। शाही महलों की इर्द–गिर्द सुरूचिपूर्ण ढ़ग से बाग लगा दिये जाते थे। मकान और किले शास्त्रों में बतायें गये नियमों के अनुसार बनते थे। इस बात का ध्यान रखा जाता था कि उनका निर्माण पहले से सावधानीपूर्वक नियत शुभ–मुहूर्त पर आरम्भ हो। महल के शयनागार की साज–सज्जा, हाथी–दाँत के उनके पलंग और उत्तम प्रकार के गद्दो का वर्णन मिलता है। इस प्रकार उन प्रारभिक दिनों में भी उच्च वर्ग के लोग शान–शौकत की चीजो से अपरिचित न थे। पत्नी की बहुत ज्यादा इज्जत होती थी और उसे परिवार की रोशनी समझा जाता था। साधारण जन शहरों और गाँवो में मामूली घरों में रहते थे जबकि नीच जातियाँ और वन–जनजातियों के लोग झोपड़ियों में रहते थे। जिनका वर्णन भी कविताओं में मिलता है। पुलैयान रस्सी के चारपाईयों बनाते थे और यह भी उल्लेखनीय है कि बिछाकर सोने के लिए पशु चर्म का उपयोग भी होता था।[52] ये सब कुछ उदाहरण दक्षिण भारत के शिल्पकारों की बेमिसाल कार्यों का है। जिससे पता चलता है कि विवेच्य काल में भी दक्षिण के शिल्पकार अपने कामों में कितने दक्ष थे।

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 5, October 2026
Impact Factor: 8.2

इस तरह से उपर्युक्त जानकारी के आधार पर स्पष्ट होता है कि व्यापारी और शिल्पकार केवल वस्तुविनिमय तक सीमित नहीं थे। प्राचीन काल से लेकर अब तक इन वर्णो ने न केवल उत्पाद एवं व्यापार के नेटवर्क को मजबूत किया, बल्कि क्षेत्रीय समृद्धि और सांस्कृतिक विस्तार में भी मुख्य स्तम्भ के रूप में कार्य किया है।

I UnHk&I ph

1. बासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय अभिलेख, बनारस, 1965, पृ०–2
2. कैलाशचन्द्र जैन, प्राचीन भारतीय सामाजिक एव आर्थिक सस्थाएँ, भोजपाल, 1995, (पंचम सस्करण), पृ०–152
3. कैलाशचन्द्र जैन, प्राचीन भारतीय सामाजिक एव आर्थिक सस्थाएँ, भोजपाल, 1995, (पंचम सस्करण), पृ०–127
4. राधाकृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पटना, 1996 (द्वितीय सस्करण), पृ०–151
5. वही, पृ०–20
6. वही, पृ०–20
7. जर्नल ऑफ द इकोनोमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ द ऑरियन्ट, खण्ड–5, पृ०–309–318
8. जर्नल ऑफ द ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, खण्ड–XIII, पृ०–349–359
9. जर्नल ऑफ एन्शियेट इण्डियन हिस्ट्री, खण्ड–III पृ०–293–94
10. राधाकृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ०–22
11. वही, पृ०–22
12. वही, पृ०–152
13. वही, पृ०–152
14. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, इलाहाबाद, 1997, पृ०138
15. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, इलाहाबाद, 1997, पृ०–139
16. के०के० पिल्लै, ए सोसल हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स, मद्रास, 1969, पृ० 198
17. वही, पृ०–199
18. वही, पृ०–201
19. वही, पृ०–203–204
20. वही, पृ०–204
21. वही, पृ०–205
22. वही, पृ०–207
23. पी०टी० श्री निवास अय्यगार, प्री आर्यन तमिल कल्चर, पृ०–80, उद्धृत, पिल्लै, सोसाल हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स, पृ०–236
24. के0के0 पिल्लै, ए सोशल हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स, पृ०–237
25. पोरूनाराटूपडै, पक्तियाँ 258–261
26. वही, पक्तियाँ, 190–196

IJARSCT
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
ISSN: 2581-9429
Volume 6, Issue 5, October 2026
Impact Factor: 8.2

27. सिरूपानारूप्पडै, पक्तियाँ– 85–86
28. पट्टिनप्पालै, पक्तियाँ 30–32
29. पेरूपा, पक्तियाँ, 60–80
30. वही, पक्तियाँ, 90–93
31. कनकसभाई, पुरम् 56, तमिल (1800 ईयर एगो), पृ०–65
32. के०ए० नीलकठ शास्त्री, चोल वश (हिन्दी अनुवाद) मगलनाथ सिह, दिल्ली, 1979, पृ०–65
33. मुल्लैप्पाट्ट, पक्तियों, 54–60
34. पट्टिनप्पालै, पक्तियों, 211–12
35. के०ए० नीलकठ शास्त्री, चोल वंश, पृ० 65
36. मुल्लैप्पाट्ट, पक्तियाँ, 54–60
37. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, दिल्ली, 1999, पृ०–164
38. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ०–118
39. वही,
40. के०ए० नीलकठ शास्त्री, चोलवंश, पृ० 67
41. वही,
42. योगेन्द्र मिश्र, प्राचीन भारतीय व्यापार और समुद्र यात्रा, रिप्रिन्टेड फ्राम जर्नल ऑफ द बिहार रिसर्च सोसाइटी, वोल्यूम XLVII, पार्ट 1961, पृ०–9–10
43. वही, पृ०–10–11
44. वही, पृ०–10
45. पेरूपानारूपडै, पक्तियों 431–432
46. पी०टी० श्रीनिवास अय्यगार, हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स, पृ०–311
47. वही, पृ०–312
48. पेरूपानारूपडै, पक्तियाँ, 426–27
49. पी०टी० श्रीनिवास अय्यगर, हिस्ट्री ऑफ दि तमिल्स, पृ०–312
50. वही, पृ०–314–15
51. वही, पृ०–313
52. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ०–121